# हज़रत इमाम जैनुलआबिदीन (अ0)

सैय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी (ताबा सराह)

**नाम : अली लक़ब : सज्जाद ज़ैनुलआबिदीन**

**विलादत : 15 जमादिस्सानी 38 हिजरी**

**वफात : 25 मुहर्रम 95 हिजरी**

आप का दौर कर्बला के तारीख़ी कारनामे और शहादते इमाम हुसैन (अ0) के बाद शुरु हुआ यह वह ज़माना था कि जब मज़ालिम कर्बला के रद्दे अमल में मुसलमानों की आँखें खुल रहीं थीं कुछ मुख़लिस अफराद सच्चे ज़ज़्बए अक़ीदत के साथ बनी उमैय्या के ख़िलाफ खड़े हो गये थे। और कुछ ने सियासी तौर पर इससे फायदा उठाकर अपने हुसूले इक़्तेदार का इसे ज़रिया बनाया था। उस वक़्त आम इन्सानी जज़्बात के लिहाज़ से अन्दाज़ा कीजिये कि एक वह हस्ती जिसने कर्बला के बहत्तर लाशे ज़मीने गर्म पर देखे हों और यज़ीद के हाथों खुद वह मज़ालिम उठाये हों, जो कर्बला से कूफा और कूफे से शाम तक पूरे अलमिया में मुज़मर हैं उसे हर उस कोशिश के साथ जो सलतनते बनी उमैय्या के ख़िलाफ हो रही हो कितनी क़लबी वाबस्तगी होना चाहिए और इस वाबस्तगी के साथ बड़ी मुश्किल बात है कि वह अवाक़िब पर नज़र कर सके। ऐसे मौक़ों पर आम जज़्बात का तक़ाज़ा तो यह है कि चाहे हुब्बे अली (अ0) के जज़्बे में कुछ कोशिशें न हों सिर्फ बुग्ज़े मुआविया में हों मगर ऐसी कोशिशों के साथ भी आदमी मुन्सलिक हो जाता है, फक़त इसलिए कि हमारे मुशतरक दुश्मन के ख़िलाफ हैं खुसूसन जब कि इस में कामियाबी के आसार भी नज़र आ रहे हों जैसे अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर जिन्होंने हिजाज़ में इतना मुकम्मल तसल्लुत हासिल कर लिया था कि जमहूरी नज़रिया–ए–ख़िलाफत के बहुत से उलमा क़हर व ग़लबा की बिना पर उनकी बाज़ाबता ख़िलाफत के क़ायल हैं, जिसकी तसदीक़ हाफिज़ सुयूती की तारीख़ुल खुलफा से हो सकती है। या अहले मदीना की मुनज़्ज़म कोशिश जिसने उम्माले यज़ीद को वक़्ती तौर से सही निकल जाने पर मजबूर कर दिया था मगर ऐसी हालत में जब कि जनाब मुहम्मद बिन हनफिया की वाबस्तगी इन तहरीकों से किसी हद तक नुमायाँ हो सकी, इमाम ज़ैनुल आबिदीन का किरदार उन तमाम मवाक़ेअ पर इस तरह अलाहेदगी का रहा कि आपको इन तहरीकों से कभी वाबस्ता नहीं किया जा सका।

यह अलाहेदगी ही बड़े ज़ब्ते नफ्स का कारनामा है चे जाये के आप ने इस मौक़े पर मुसीबत ज़दों के पनाह देने की ख़िदमत अपने ज़िम्मे रखी। चुनान चे मरवान ऐसे दुश्मने अहले बैत (अ0) को जब जान बचाकर भागने की ज़रूरत पेश हुई तो अपने अहलो अयाल और सामान व अमवाल की हिफ़ाज़त के लिए अगर किसी जाए पनाह पर उसकी नज़र पड़ी तो वह सिर्फ हज़रत इमाम ज़ैनुल आबिदीन (अ0) थे। इस किरदार का यह नतीजा था कि जब फिर फौजे यज़ीद ने यूरिश की मदीने में क़त्ले आम किया जो वाक़ेआए

हर्रा के नाम से मशहूर है तो आप के लिए मुमकिन हुआ कि आप मज़लूमीने मदीना में से भी चार सौ बेबस ख़वातीन को अपनी पनाह में ले सकें और मुहासरे के ज़माने में आप उनके कफ़ील रहें।

आप का मरवान को पनाह देना बता रहा था कि आप उन ही अली बिन अबी तालिब (अ0) की रिवायात के हामिल हैं जिन्होंने अपने क़ातिल को भी जामे शीर पिलाने की सिफारिश की थी और हज़रत इमाम हुसैन (अ0) के जिन्होंने दुश्मनों की फौज को पानी पिलवाया था। वही किरदार आज इमाम ज़ैनुल आबिदीन के क़ालब में निगाहों के सामने है।

इसी की मिसाल फिर उस वक़्त सामने आयी जब यज़ीद की मौत के बाद इंक़िलाब के ख़ौफ से हसीन बिन नुमैर जो मक्के का मुहासरा किये हुए था, मुज़तरिबाना और सरासीमिया अपने लश्कर को लेकर फरार पर मजबूर हुआ और मदीने की राह से शाम की तरफ रवाना हुआ। बनी उमैय्या से नफरत इतनी बढ़ चुकी थी कि कोई न उन लोगों को खाने का सामान देता था न ऊँटों और घोड़ों के लिये चारा मुहैय्या हो सकता था इत्तेफाक़ से इमाम ज़ैनुल आबिदीन (अ0) अपनी खेती से ग़ल्ला और चारा लेकर वापस जा रहे थे। हसीन ने बढ़कर मुलतजियाना अन्दाज़ में कहा कि यह ग़ल्ला और चारा मेरे हाथ फरोख़्त कर दीजिये। आपने फरमाया, ज़रूरतमन्द की ख़ातिर यह बिला क़ीमत हाज़िर है। इस करम को देखकर उसने तआरुफ हासिल किया कि आप हैं कौन? जब मालूम हुआ तो उसने हैरत के साथ कहा आपने पहचाना भी है कि मैं कौन हूँ? हज़रत ने फरमाया : मैं खूब पहचानता हूँ मगर भूकों और प्यासों की मदद करना हम अहले बैत का शिआर है। हसीन इस वाक़ेए से इतना मुतास्सिर हुआ कि घोड़े से नीचे उतर कर कहने लगा कि यज़ीद तो ख़त्म हो चुका है आप हाथ बढ़ाइये मैं अपने पूरे लश्कर समेत आप की बैअत करता हूँ और आप की ख़िलाफत को तसलीम कराने में कोई दक़ीक़ा उठा न रखूँगा इस पर आप ने बअन्दाज़े तहक़ीर तबस्सुम फरमाया और बग़ैर कुछ जवाब दिये आगे रवाना हो गये।

इस दौरे इंक़िलाब के हंगामी तक़ाज़ों से इस तरह दामन बचाने के बावजूद इस सरचशमए इंक़िलाब यानि वाक़ेआए कर्बला की याद को बराबर आप ने ताज़ा रखा। यह ज़माना ऐसा न था कि उमूमी मजालिस की बिना हो सकती और अवाम में तक़रीरों के ज़रिये से इसकी इशाअत की जाती। इसलिए आप ने अपने शख़्सी तास्सुराते ग़म और मुसलसल अश्कबारी पर इक्तेफा की, जो बिलकुल फितरी हैसियत रखती थी। यह मुक़ावमते मजहूल से ज़ियादा ग़ैर महसूस ज़रिया था इन इंक़िलाबी इक़दार के तहफ्फ़ुज़ का जो वाक़ेआए कर्बला में मुज़मर थे मगर आइनी तौर पर किसी हुकूमत के बस की बात न थी कि वह इस गिरया पर पाबन्दी आएद कर सकती। यूँ मज़ालिम कर्बला की रौ में किसी आँख से आँसू निकलने पर नोके नेज़ा से अज़िय्यत दी जाती हो तो वह और बात है मगर दौरे अमन में किसी इन्तिहाई ज़ालिम व जाबिर हुकूमत के लिए भी इसका मौक़ा न था कि वह एक बेटे को जिसका बाप तीन दिन का भूका प्यासा पसे गर्दन से ज़बह किया गया हो, और जिसके घर से एक दोपहर में अटठारह जनाज़े निकल गये हों और जिसकी माँ बहनें असीर बनाकर शहर ब शहर और दयार ब दयार फिराई गयी हों इन तास्सुरात के इज़्हार से

रोक सके जो सिर्फ रंज व मलाल की शक्ल में आँसू बनकर उसकी आँखों से जारी हों, फिर बिला शुबह इस ग़ैर मामूली मुसलसल गिरया में जो पच्चीस बरस तक जारी रहा वह अज़ीम तासीर थी जिसे चाहे तारीख़ की सतही निगाहे अस्बाब इंक़िलाब में शुमार न करे मगर वाक़अिय्यत की दुनिया में इसकी अहमिय्यत से इन्कार नहीं किया जा सकता।

इस मुसलसल गिरया के वाक़ेआत को तारीख़ों में पढ़ने के बाद तबीअते इन्सानी के फितरी तक़ाज़ों की बिना पर हर शख़्स ऐसा तसव्वुर कर सकता है कि इस ग़मज़दा और हमातन गिरया व आह हस्ती से इसके बाद यह तवक़्क़ो करना ग़लत है कि वह उलूम व मआरिफ की कोई ख़िदमत अन्जाम दे सके मगर नहीं ''मेअराजे इन्सानियत'' तो इसी तज़ाद में मुज़मर है कि यह ग़रक़े हसरत व अन्दोह ज़ात भी अपने इस फ़रीज़े से जो बहैसियते नाएबे हक़ व रहनुमाए ख़ल्क़ इसके ज़िम्मे है, ग़ाफिल नहीं होती। बेशक यह दौर ऐसा पुरआशोब था कि आपके गिर्द व पेश तालिबाने हिदायत का मजमा नहीं हो सकता था। आप किसी मजमे को मुख़ातब बनाकर कोई तक़रीर नहीं फरमा सकते थे। न अपने क़लम के ज़रिये लोगों से सिलसिलए मुख़ाबिरत जारी फरमा सकते थे इसलिए इस दौर के तक़ाज़ों के मातहत आपने मुनफरिद तरीक़ा ''दुआ व मुनाजात'' का इख़तियार फरमाया। यह भी मिसले ''गिरया'' के एक लाज़िम बज़ाहिर ग़ैर मुतअद्दी अमल था, जो किसी क़ानून की ज़द में नहीं आ सकता था मगर उन दुआओं को भी जो ''सहीफए सज्जादिया'' की शक्ल में महफूज़ हैं जब हम देखते हैं तो बिला किसी शाएबए मुबालेग़ा व मजाज़ के यह हक़ीक़त नुमायाँ नज़र आती है कि वही रूह जो हज़रत अली बिन अबी तालिब के ''नहजुल बलाग़ा'' वाले खुतबों में मुतहर्रिक है वही सहीफ–ए–कामिला की इन दुआओं में भी मौजूद है सिर्फ यह कि वहाँ जो हकीमाना गहराव और ख़तीबाना बहाव है उसकी क़ाएम मक़ामी यहाँ इस सोज़ो गुदाज़ ने की है जिस का दुआ व मुनाजात में महल है और इस तरह इसके सुनने वालों में दिमाग़ के साथ–साथ दिल भी शिद्दत से मुतास्सिर होता है जो ग़ालिबन दूसरों की इस्लाह के लिए कुछ कम अहमिय्यत नहीं रखता और इसी ज़ेल में एख़लाक़ व फराएज़ के तालीमात भी मुज़मर हैं, जो मदरसए अहले बैत (अ0) के मक़ासिदे खुसूसी की हैसियत रखते हैं।

इस दौर में इस ज़रियाए तबलीग़ व तदरीस के सिवा कोई दूसरा ज़रिया मुमकिन न था और इमामे ज़ैनुल आबिदीन (अ0) ने इस ज़रिये को इख़तियार करके साबित कर दिया कि यह हज़रात किसी सख़्त माहोल में भी अपने फ़राएज़ और अहम मक़सिद को हरगिज़ नज़र अन्दाज़ नहीं करते।